रघुनाथराव

महाराज शिवाजी के समय का एक ऐतिहासिक नाटक।

नाटक के खेलने के पूर्व प्रकाशक की अनुमति प्राप्त कीजिये।

लेखक और प्रकाशक

साह मदनमोहन, मैनेजर,

लक्ष्मण साहित्य भंडार,

चौक, लखनऊ।

केसरीदास सेठ, सुपरिंटेंडेंट द्वारा
नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ में मुद्रित।

प्रथम संस्करण १००० } माघ सं० १९७६ { साधारण संस्करण ॥=) पुस्तकालय ,, ॥।=)

समर्पण

* श्री *

पूज्यपाद श्री १०८ श्री युक्त पं० बाल-
मुकुन्द जी बाजपेयी :—

जो बीज बोया आपने उस विटप का यह फूल है।
गुरु-पद्म-पद में भेंट करना सर्वथा अनुकूल है॥
जो दोष हों सब कर क्षमा उत्साह-वृद्धी कीजिये।
स्वीकार करके भेंट यह कृतकृत्य मुझको कीजिये॥

"लेखक"

वक्तव्य।

नाटक दृश्यकाव्य है। काव्य के स्वरूप और प्रयोजन का ज्ञान हो जाने ही नाटक के प्रयोजनादि के सम्बन्ध में हम अन्धकार में नहीं रह जाते। "साहित्यदर्पण" कार श्रीविश्वनाथ कविराज के शब्दों में "रसात्मक वाक्य" ही काव्य है। और काव्य का प्रयोजन "काव्यप्रकाश" के रचयिता सांचे साहित्याचार्य महामति मम्मट भट्ट ने यह बतलाया है:—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

संक्षेप में तुरन्त परमानन्द और कान्ता का सा उपदेश काव्य से प्राप्त होता है। कान्ता हाव, भाव, कटाक्ष, सेवा आदि से आपको मोहती हुई रस का सञ्चार करती तथा उपदेश देती है। कविता-कामिनि का भी यही कर्म है। इस मर्म की उपलब्धि से काव्य की महिमा तथा "काव्य-विनोद से धीमानों के काल-गमन" के तत्त्व का बोध हो जाता है। ऐसी अपूर्व विभूति से नाता जोड़ने, ऐसी रस-मयी सुलक्षणा को अपनाने को मानव जाति यदि सदा उत्सुक रही तथा है तो आश्चर्य ही क्या है!

काव्य और उसके प्रयोजन के सम्बन्ध में हमारे प्राचीन साहित्य-मर्मज्ञों और अर्वाचीन आचार्यों में अधिक मत-

भेद नहीं। किन्तु अब एक वर्ग ऐसा भी अवतीर्ण हो रहा है, जो कविताकादम्बिनी की रसवर्षा, सौन्दर्य, लोकोत्तर चमत्कार, और मनोरञ्जिनी शक्ति को ही परमोद्देश्य मानता है। इस श्रेणी के पण्डित पुङ्गवों का पुष्ट पाण्डित्य काव्य के पाश में बँधकर भी उसकी उपदेशात्मक सत्ता को स्वीकार कर अपने प्रवीणता-प्रसून पर पाला नहीं पड़ने देना चाहता। गत शताब्दी के बृटेन के लोक-विश्रुत साहित्यांशरपी स्वर्गवासी मि० आस्कर वाइल्ड (Oscar Wilde) के मत से, जिन्हें एक समालोचक ने "सृष्टिकर्ता के अनेक शताब्दियों के उद्योग का फल" बताया है, काव्य-कला का कार्य केवल रस-सञ्चार करना (creation of mood) है, नैतिकता और अनैतिकता से उसका कोई प्रयोजन नहीं। रसात्मक वाक्य या वाक्यसमूह, दूसरे शब्दों में सत्काव्य रस का सञ्चार तो करेहीगा। अन्यथा उसमें रसात्मकता का अभाव है और काव्य कहे जाने के पात्र नहीं। किन्तु "नैतिकता अथवा अनैतिकता से उसके असम्पर्क" की कल्पना काव्य-किरीट कालिदास और "उत्तर रामचरित" के शिल्पी श्रीभवभूति के देशवासियों को आकुल करनेवाली है। जो हो, किसी मत के मण्डन या खण्डन में यहां कुछ लिखना हमारा अभीष्ट नहीं है। हमें केवल काव्य का सूत्ररूप से परिचय देना और उसके प्रयोजन का निर्देश करना था। अस्तु।

मनोरञ्जन के साथ ही साथ काव्यद्वारा उपदेश देने की प्रवृत्ति इतिहाससिद्ध एवं प्रत्यक्ष तथ्य है। व्यक्तिगत वशीकरण, सामाजिक उद्देश्यों की सिद्धि, और नैतिक शिक्षाओं के प्रचार के लिये आदि कवि वाल्मीकि से लगा

कर प्रायः सभी कुशल कवियों ने आवश्यकतानुसार काव्य का सदा ही प्रयोग किया है । यह भी अविदित नहीं कि उपदेशों के अन्य प्रकारों के निरर्थक होने पर "कान्ता-सम्मित" उपदेश को सफलता हुई है। सामाजिक और नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा के विशेष उपयोगी साधन काव्य के दो प्रकार हैं । एक तो नाटक (लीला आदि), और दूसरा उपन्यास (कथा)। किसी न किसी रूप में इन दोनों प्रकारों का सदा ही उपयोग हुआ है। नाटक या उपन्यास द्वारा समाज के जितने बड़े भाग को स्पर्श किया जा सकता है उतना काव्य के अन्य किसी प्रकार से नहीं, क्योंकि साधारण से साधारण बुद्धि का मनुष्य भी नाटक अथवा उपन्यास से कुछ न कुछ लाभ उठाही सकता है, बहुत कुछ आनन्द पा सकता है, रचना की सूक्ष्मताओं और कौशल को वह हृदयङ्गम कर सके या नहीं । इसी गुण के कारण नाटकों और उपन्यासों की महिमा अधिक है ।

नाटक और उपन्यास में विशेष उपयोगी कौन है, इस विषय में आधुनिक विद्वानों में मतभेद है। इनमें कौन काव्याकाश का दिवाकर है और कौन निशाकर, इसका निर्विवाद निर्णय बड़ा ही कठिन है । हम तो कहेंगे कि दोनों ही परमास्त्र हैं, चाहे जिससे काम लिया जाय, और जहां जिसकी पहुँच हो । "विक्टोरियन नावेलिस्ट्स" नामक पुस्तक के लेखक और उनसे सहमत विद्वज्जन चाहे चतुर्मुख होकर समझावें परन्तु हम नाटक का दर्जा 'नावेल' से नीचा मानने को प्रस्तुत नहीं । किसी दृष्टि से नाटक श्रेष्ठ है तो किसी विचार से उपन्यास उत्कृष्ट

है। अनुभव और आचार्यों की शिक्षा है, जो स्वभावसिद्ध और लोकप्रसिद्ध भी है, कि कृति या नाट्य का जितना प्रभाव पड़ता है उसकी लेखन या भाषण से आशा करना दुराशा मात्र है। उपन्यास केवल साक्षर समुदाय की वस्तु है। इसके विपरीत नाटकाभिनय निरक्षरों को निराश नहीं करता, किसी प्रकार की सीमान्त रेखा नहीं खींचता। दृश्य काव्य होने से नाटक की श्रेष्ठता बहुत कुछ सहज ही अनुमेय है। इसके सिवाय, सांगीत के सम्मिलन से भी नाटक का बल बढ़ गया है, क्षेत्र-विस्तार अवश्य हुआ है।

सखेद लिखना पड़ता है कि एक प्रकार से मातृभाषा नागरी में नाटकों का निरानिर अभाव है। भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी का शिर समस्त भारतीय भाषाओं से यदि ऊँचा है तो उसके काव्य भाग के कारण। बहुत कम ऐसी भाषायें हैं जिनका काव्य कोष इतना परिपूर्ण हो। इस गौरवगरिमा के लिये हिन्दीभाषी अपने प्राचीन कवियों के प्रति चिरकृतज्ञ रहेंगे। परन्तु परिताप का विषय है कि नाटक की ओर से वे पूरे उदासीन ही रहे। ऐसा क्यों हुआ? हिन्दी की दादी देववाणी के कई नाटक—अभिज्ञान शाकुन्तल, उत्तर रामचरित आदि—तो संसार के नाटक-साहित्य के शिरोमणि समझे जाते हैं। फिर हिन्दी नाटकों से नंगी क्यों रही? एक मान्य अंग्रेज लेखक की सम्मति है कि जाति के उत्कर्ष और गौरव की ऋतु में नाट्य साहित्य फलता फूलता है। अंग्रेज़ी नाटक साहित्य एलीज़ेबेथ-काल में, जो बृटेन का सुवर्ण युग था, पूर्णश्री को प्राप्त हुआ था। निस्सन्देह हिन्दी और हिन्दीसाहित्य

के विकाश तथा हिन्दू जाति के ह्रास के इतिहास समसामयिक हैं। बहुत सम्भव है, जातीय अधोगति ही हिन्दी साहित्य के दृश्य काव्य की दयनीय दशा का हेतु हो। फिर भी प्राचीन हिन्दी साहित्य-संरक्षकों की उदासीनता पर कम उत्तरदायित्व नहीं है क्योंकि प्राचीन हिन्दी नाटक का नामोनिशान भी तो नहीं है।

यह तो हुई प्राचीन काल की बात। हमारी भाषा के आधुनिक इतिहास में भी इस सम्बन्ध में गर्व करने की कोई बात नहीं है। कुशल विद्वानों द्वारा अभिज्ञान शाकुन्तल और मुद्राराक्षस आदि संस्कृत नाटकों के भाषान्तर से श्री गणेश हुआ। नवहिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने, जिनका नाम हिन्दी संसार में सदा अभिमान के साथ सुमिरा जायगा, मौलिक नाटक भी लिखे। बाबू श्रीनिवासदास आदि ने भी सहायक प्रयत्न किया। तबसे अब तक कुछ न कुछ उद्योग होता आया है, परन्तु वह नगण्य से किसी प्रकार अधिक नहीं। मराठी, बंगला, और गुजराती आदि प्रान्तिक भाषाओं की तुलना में हमारे पास क्या रक्खा है ? न तो ऐतिहासिक और पौराणिक प्रातःस्मरणीय आदर्श महापुरुषों के जीवन-चरित रत्नों से जटित नाटक-आभरण ही बहुल संख्या में हैं और न समसामयिक सामाजिक जीवन का ही चतुर चितेरों द्वारा चित्राङ्कन हुआ है। परवर्ती विभाग तो यत्परोनास्ति दरिद्र है। वर्तमान में बंगला नाटकों के अनुवाद प्रकाशित हो रहे हैं और कभी २ कोई मौलिक-रचना-खद्योत निविड़ अन्धकार में चमक जाता है। किन्तु जिस प्रकार हम किसी मेधावी उपन्यासकार का अभिमान नहीं कर सकते उसी

भांति किसी नामी नाटककार का नाम भी सगर्व नहीं ले सकते।

हमारे नाट्य-साहित्य की उपर्युक्त उभय शाखाओं को भगवती सरस्वती के स्नेहभाजन साहित्य-सेवियों की आवश्यकता है। चकित चखों से राष्ट्रभाषा हिन्दी अपने वर पुत्रों की बाट जोह रही है। क्या वे उसे हताश करेंगे? यह ठीक है कि "परमानन्ददायिनी और कान्ता के समान उपदेशकारिणी" कमनीय कविता की रचना अति कौशल-साध्य कर्म है। साहित्यानुशीलन मात्र से कोई कुशल कवि नहीं बन जाया करता। अनुशीलन और अध्ययन से केवल रचना-शक्ति का विकाश होता है, प्रतिभा को प्रौढ़ता प्राप्त होती है, किन्तु बीजभूत शक्ति का अस्तित्व पहले ही से होना चाहिये। ये निर्विवाद बातें हैं। कवित्व शक्ति की सहजता लोकप्रसिद्ध तथ्य है। और यह मान लेने में भी हमें कोई आपत्ति नहीं कि, (एक प्राचीन विद्वान के अनुसार "काव्येषु नाटकं रम्यं") काव्य में यदि नाटक रम्य है तो उसकी रचना के कार्य को भी उसी मात्रा में अधिक क्षमता की अपेक्षा है, विशेष कुशलहस्त का प्रयोजन है। किन्तु क्या हिन्दी के भवभूति और कालिदास, शेक्सपीयर या मोलियर, गिरीश घोष और द्विजेन्द्रराय के आविर्भाव की प्रत्याशा में हमें हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना चाहिये? क्या उनके उपयुक्त वाटिका तैयार कर रखना वांछनीय नहीं? क्या हमारा यह परम कर्त्तव्य नहीं कि अपने नाटक-कानन के उन कुलीन कुसुमों के अभिनन्दन के लिये, जो यथासमय अपने सौरभ से दिगदिगन्त सुवासित करेंगे, अल्पगन्ध और निर्गन्ध रंग-

बिरंमे पुष्पों को खिलावें ? इन प्रश्नों के उत्तर में "हां" कहा जा सकता है, मुझे तो ऐसी आशा नहीं। मैं तो यह कहूंगा कि सामान्य कृतियां अपेक्षित वन्दनीय जनों के आवाहन की ऋचायें हैं, उनके स्वागत-सम्बन्धी गायन-वाद्य का आयोजन हैं।

इस स्पष्टीकरण के अनन्तर कदाचित किसी को भी यह न विचारना पड़ेगा कि, प्रस्तुत नाटक मैं किस आशा और बल पर हिन्दी जगत के हाथ में रख रहा हूँ। यह नाटक शृङ्गाररस-प्रधान है। छत्रपति महाराज शिवाजी के एक हवलदार की जीवन-घटनायें इसमें ग्रथित हुई हैं। इसके नायक रघुनाथराव के पवित्र प्रेम, विलक्षण वीरता, सराहनीय सौम्यता, स्तुत्य स्वामिभक्ति, कठिन कर्त्तव्य-परायणता, अविचल वचनपालन, सहोदरा के सती होने पर शोकातुरता, और नायिका सरयूबाला का अपने मनसा-गृहीत पति के लिये गृहत्याग तथा पातिव्रत-भाव आदि का चित्र खींचने की चेष्टा की गई है। अनायास आगत एक भयङ्कर विघ्न के दूर होने पर अन्त में रघुनाथ-राव और सरयूबाला का विवाह कराया गया है। इस मुख्य कथा-सूत्र के साथ प्रसङ्गवश महाराज शिवाजी के चातुर्य और शौर्य का दिग्दर्शन होता है। सम्राट औरङ्ग-ज़ेब के सेनापति महाराज जयसिंह के उपदेशमय अगाध अनुभव का परिचय मिलता है। हिन्दू सभ्यता का उपा-देय आदर्श तो पंक्ति २ पर नृत्य कर ही रहा है। यथाशक्ति यह ध्यान रखा गया है कि नाटक खेला जा सके, केवल पढ़ने की सामग्री न रहे।

यह मेरी प्रथम कृति है। इसके सिवाय, ऐतिहासिक

नाटक लिखने का कार्य वैसाही है जैसे स्मृति के सहारे किसी अनुपस्थित व्यक्ति या आंखों से ओट दृश्य का चित्राङ्कन। एक तो जटिल कार्य, और फिर वास्तविक शक्ति तथा अनुभव दोनों ही का अभाव। ऐसी अवस्था में मुझे किसी प्रकार की सफलता हुई होगी, इसकी सम्भावना बहुत कम है। जो हो, पाठक स्वयं विचार करें। किन्तु त्रुटियों की उपेक्षापूर्वक यदि प्रोत्साहन के अभिप्राय से हिन्दीप्रेमियों ने इसे अपनाकर मुझे फिर भी सेवा करने का अवसर दिया तो मैं अपने को धन्य समझूँगा। गुरुजनों की क्षमावृत्ति, साहित्यानुरागियों की सहृदयता, और सज्जनों की उदारता का मुझे बहुत कुछ भरोसा है।

अन्त में स्वर्गवासी सुविख्यात सर रमेशचन्द्रदत्त के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना मेरा कर्त्तव्य है, जिनका "महाराष्ट्र जीवन प्रभात" उपन्यास इस नाटक के कथानक की भित्ति है। मित्रवर पं० रामदासजी गौड़ का भी मैं आभारी हूँ, जिनसे गायनों की रचना में सामान्य सहायता नहीं प्राप्त हुई है।

चौक, लखनऊ.
मि० माघ कृ० ११
शुक्रवार, सं० १९७६

विनीत
साह मदनमोहन

पात्र

महाराज शिवाजी	महाराष्ट्र देश के स्वाधीन राजा।
महाराज जयसिंह	जयपूर के पराधीन राजा।
महाराज यशवन्तसिंह	जोधपूर के पराधीन राजा।
औरंगज़ेब	भारत का सम्राट।
मूरेश्वर पेशवाजी तन्नजी मालश्री सुवर्णदेव अन्नजीदत्त	महाराज शिवाजी के विश्वासी, बुद्धिमान और परम भक्त राज्य-कर्मचारी।
रामसिंह	महाराज जयसिंह के पुत्र।
रघुनाथराव	महाराज शिवाजी का एक वीर हवलदार।
जनार्दनदेव	ईशानी देवी के मंदिर के पुजारी।
चन्द्रराव	महाराज शिवाजी का जुमलेदार। रघुनाथ का बहनोई।
शाइस्ताखां	औरंगज़ेब का एक सेनापति।
अनवरी	शाइस्ताखां का मुसाहेब।
चांदखां	शाइस्ताखां का एक सैनिक।
दानिशमन्द	औरंगज़ेब का एक मुसाहेब।
रहमतखां	बीजापूर का वीर सेनापति।
गोकर्ण	सरयूबाला का आश्रयदाता किसान।
भीम	गोकर्ण किसान का पुत्र।

सूत्रधार, पारिपार्श्विक, चोबदार, सैनिक, दर्बारी इत्यादि।

पात्री

सरयूबाला	एक राजपूत कन्या।
लक्ष्मीबाई	रघुनाथराव की बहन। चन्द्रराव की स्त्री।
मालती	गोकर्ण की कन्या।
गोकर्ण की स्त्री	मालती और भीम की माता।

नटी, सहेली इत्यादि।

शुद्धिपत्र

कृपा कर पढ़ने के पूर्व इन विशेष भूलों को, जिनसे भावान्तर होनेका भय है, शुद्ध कर लेने की कृपा कीजियेगा।

	अशुद्ध	शुद्ध
पृष्ठ २२	"तुम्हारे पिता का रक्त"	"तुम्हारे पिता के साथियों का रक्त"
,, ३२	[परदे का गिरना]	[परदे का उठना]
,, ४४	गाने के पूर्व शून्य	[चन्द्रराव का जाना]
,, ४४	[गाना]	[लक्ष्मी का गाना]

सूत्रधार

[सूत्रधार का ईश्वरबन्दना करते दिखाई देना]

(ध्रुपद)

[तर्ज़ः—जगवारी तेहारी...]

बनमाली, गिरधारी, बनवारी, पेवारी।
सुखकारी, दुख हर जग के, दुष्टन मदहारी ॥ बनमाली...
बिना जपे गुण तुम्हार, कौन होत भव के पार।
कोऊ न पायो तुम्हरो पार, सुरपति मत हारी ॥ बनमाली...
दो० :—श्याम सलोने तुम्हीं हो, भव के तारनहार।
आय बेगि अब करहु तुम, भारत का उद्धार ॥
तू त्राता है दाता प्यारा, तू है जग का पालनहारा,
तो पे तन मन धन है वारा ॥ बनमाली...

[पारिपार्श्विक का आना]

पारि०:— [हाथ जोड़कर] **महाराज ! आज हम लोगों की इच्छा "रघुनाथराव" नाटक खेलने की है ?**

सूत्र०:—**अच्छा तो है। भाषा भी बड़ी मनोहर है और आज कल के लोगों की इच्छा के अनुकूल भी है। परन्तु इस विषय में स्त्रियों की सम्मति बड़ी उपयोगी होती है। जाओ, सुशीला को बुला लाओ। उसकी सम्मति जान लेना आवश्यक है।**

[पारिपार्श्विक का जाना]

(छप्पय)

सूत्र०:–जहा स्वतत्र विचार, सदा बसते है मन में।
जहा न बाधक बने सबल निबलों के सुख मे ॥
भारवि, तुलसी, सूर, भय बाणी के पूरे।
शिव, प्रताप, हम्मीर वीर शासक थे रूरे ॥
सब भाति जहा आनद है, समता सुख के है नियम।
बस उसी स्वतन्त्र स्वदेश मे, "जन्में है जगदीश हम" ॥

[पारिपार्श्विक का सुशीला सहित आना]

सुशीलाः–स्वामी! दासी को किस लिये बुलाया है?

सूत्र०:–प्रिये! आज हमारी नाटकमंडली की इच्छा "रघुनाथराव" नाटक खेलने की है। तुम्हारी इस विषय में क्या सम्मति है—यही जानने के लिये तुम्हे बुलाया है।

सुशी०:–कौनसा रघुनाथराव नाटक? [कुछ सोचकर] वही न जो लखनऊ के लक्ष्मण साहित्य भंडार से प्रकाशित हुआ है और जिसके खेलने की आज्ञा हमारी नाट्यसमिति को भंडार के प्रबन्धकर्ता साहु मदनमोहन ने प्रसन्नतापूर्वक दे दी है।

सूत्र०:–हां, वही।

सुशी०:–तब तो बड़ी उत्तम बात है। रघुनाथराव के वीर चरित्र के साथ ही साथ महानुभाव शिवाजी के समान वीर और प्रतापी महाराज का जीवन-चरित्र कौन नहीं देखना चाहेगा। आहा, वह स्त्री धन्य है

जो ऐसा वीर पुरुष उत्पन्न करे, वह भूमि बड़ी पवित्र और पूजनीय है जहां ऐसे शूर हों और वह जनता भी बड़भागिनी है जिसे ऐसा राजा मिले।

सूत्र०:-तो तुम्हारी भी इच्छा इसी नाटक को देखने की है।

सुशी०:-अवश्य।

सूत्र०:-अच्छी बात है। [पारिपार्श्विक से] तुम जाकर सबको यह समाचार सुना दो और भलीभांति समझा दो जिसमें कार्य के समय किसी प्रकार की भूल न हो। मैं भी आता हूं।

[पारिपार्श्विक का जाना]

सूत्र०:-[स्त्री से] अच्छा तो अब चलकर प्रबन्ध करना चाहिये, जिसमें नाटक के समय किसी प्रकार की गड़बड़ न होने पावे।

(गाना)

[तर्ज :-भारत में कैसे २ हुए वीर]

भारत में कैसे हुए रणधीर,
निज देशही के काम पर, स्वाधीनता के नाम पर, तजा शरीर,
कैसे...
सपति सदा से जिनकी थी दासी, कहलाते थे जो सब में
विद्या की खान, तजकर धर्म, तजकर शर्म, तजकर कर्म,
हाय सपति हुई आखीर, कैसे हुए रणधीर......

[दोनों का जाना]

[परदे का उठना]

रघुनाथराव नाटक

पहला अङ्क

पहला दृश्य

महाराष्ट्र देश

[खेमे लगे हैं। शाइस्ताखां का अन्य दर्बारियों सहित कुरसी पर बैठे दिखाई देना]

अनवरी०:–जहांपनाह! मैं सच कहता हूं दिल्ली की फौज के सामने मरहटों की क्या हकीक़त है। भला तूफ़ान के सामने तिनके की क्या बिसात है।

शाइस्ता०:–वाक़ई, मरहटे पैवन्दज़र्मी हो जायँगे।

चांदखां:–मुझे खूब मालूम है उनमें ज़ोर और हिम्मत के अलावा जवांमर्दी भी है।

शाइस्ता०:–किसमें?

चांद०:–मरहटों में। हुज़ूर को खूब याद होगा—गुज़श्ता साल जब कुछ कोहिस्तानी मरहटे चाकन क़िले में घुस आये थे तब हमारी फ़ौज को कैसी मुसीबत का सामना करना पड़ा था। एक ही क़िले के फ़तह करने में हज़ारों मुग़ल शहीद हुए थे। इस वक्त भी जब हर चहार तरफ़ हमारी फ़ौज बर्बाई कीड़ों की तरह फैली हुई है वे लोग कुछ परवाह नहीं करते। निनाई, अहमदनगर और औरंगाबाद

को बरबाद ही कर डाला। फिर क्या हम उन्हें तिनके से मुशाबेहत दे सकते हैं?

शाइस्ता०:–चांदखां ज़ईफ़ हो गये हैं, यही सबब है कि पहाड़ी चूहों से ख़ौफ़ खाते हैं।

चांद०:–हुज़ूर! मरहटों की ताक़त सिर्फ़ क़िला है। इस वजह से लड़ाई करना या लड़ाई में शिकस्त देना उनके लिये कोई बड़ी बात नहीं। यह मुल्क पहाड़ी है। वे लोग यहां की हर एक जगह से ख़ूब वाक़िफ़ हैं। एक जगह हार खाकर भाग जायँगे तो दूसरी जगह इकट्ठे होकर बलवा मचायेंगे। क्या ऐसी हालत में हम उनका मुक़ाबला कर सकते हैं? उन्हें पैवन्दज़मीं बना सकते हैं? हर्गिज़ नहीं। हां फ़तह नसीब हो सकती है तो सिर्फ़ एक तरह–अगर एक २ करके क़िलों पर अपना क़ब्ज़ा कर लिया जाय तो मजबूर होकर मरहटों को हार माननी पड़ेगी।

शाइस्ता०:–[क्रोधित होकर] क्या मरहटों के भागने पर हम उनका पीछा नहीं कर सकते? क्या हमारे पास सवार नहीं हैं जो धावा करके उन्हें ख़ाक में मिला दें?

चांद०:–वाक़ई, इन पहाड़ी सवारों को खदेड़कर पकड़नेवाले सवार हमारे पास नहीं हैं। यहां के छोटे २ घोड़े मेढ़ों की तरह उछलते और हिरनों की तरह छलांगें भरते हैं—दम के दम में नौ दो ग्यारह हो जाते हैं। ख़्याल फ़रमाइये, निताईजी तो बिला खरखशे हमारे क़ब्जे में आ गया, लेकिन अहमद-

नगर और औरंगाबाद की कैसी हालत बनाई—मआज़अल्ला! रुस्तमेज़मां ने तअकुब करके उनका क्या बना लिया।

शाइस्ता०:-[कुरसी से उठकर] रुस्तमेज़मां ने दीदा दानिश्ता शिवाजी को भागने दिया। मैं उसको मुनासिब सज़ा दूंगा। क्या दिल्ली की फ़ौज में कोई भी जवांमर्द नहीं?

चांद०:-सलाह-मशविरा देने की मुझमें तमीज़ नहीं। हुज़ूर खुद तदबीर सोचें। ख़ादिम को जैसी इजाज़त होगी तामील में देरी न करेगा।

[चांदख़ां का जाना]

[चोबदार का आना]

चोब०:-हुज़ूर! सिंहगढ़ से सवार आया है।

शाइस्ता०:-हाज़िर करो।

[चोबदार का जाना। शिवाजी का दूत के भेष में आना]

शाइस्ता०:-कहिये सिंहगढ़ की क्या हालत है?

दूत:-दंडकारण्य में सैकड़ों नदियां हैं किन्तु उन्हें देखकर क्या रघुनाथजी को सरयू नदी के विछोह का दुःख भूल सकता है। सिंहगढ़ इत्यादि सैकड़ों दुर्ग अब भी महाराज शिवाजी के पास हैं, किन्तु पूना आपके हाथ में है—क्या इसे वे भूल सकते हैं।

शाइस्ता०:-वाक़ई। अपने राजा से कह देना कि जब तक खास क़िला हमारे क़ब्ज़े में है—लड़ना बेफ़ायदा है। बादशाह की इताअत क़बूल करने से फ़ायदा ही फ़ायदा है।

दूतः—चातक वचनों द्वारा अपनी अभिलाषा मेघों को नहीं बता सकता, परन्तु मेघ अपनी दया से उसकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं। याचकों को देने के लिये बड़ों की यही रीति है। महाराज शिवाजी पूना और चाकन दुर्ग निकल जाने से संधि करते लजाते हैं परन्तु आप ऐसे सज्जनों से जो कुछ मिल जायगा वही उन्हें बहुत है।

शाइस्ता०ः—पंडितजी ! तुम्हारी पंडिताई से मैं बहुत खुश हुआ। वाक़ई क्या शिवाजी सुलह करने को तैयार हैं ?

दूतः—दिल्ली की सेना का प्रचंड प्रताप ही ऐसा है।

शाइस्ता०ः—वाक़ई अगर आप सुलह का पयाम लेकर आये हैं तो शिवाजी ने आपको इसके लिये ख़ूब ही मुंतखिब किया।

[दूत अर्थात् शिवाजी का एक पत्र निकालकर देना]

शाइस्ता०ः—[खत पढ़कर] मैंने इसको देख लिया। वाक़ई बड़ी खुशी हुई। मगर क्या २ अहदोपैमान करने की ज़रूरत है।

दूतः—हमारे प्रभु ने कहा है कि जब पहले ही आप लोगों की जीत हुई तो अब युद्ध करना वृथा है।

शाइस्ता०ः—बेहतर, बहुत मुनासिब।

दूतः—संधि करने के पहले महाराज यह जान लेना चाहते हैं कि क्या दिल्लीश्वर भी इसके इच्छुक हैं ? यदि हैं तो किन नियमों का पालन करना होगा ?

शाइस्ता०:-अव्वल, बादशाह की मातहती। क्या इसके लिये तुम्हारे महाराज तैयार हैं?

दूतः-उनकी सम्मति या असम्मति जताने का मुझे अधिकार नहीं है। आप जो कुछ मुझसे कहेंगे मैं शिवाजी से निवेदन कर दूंगा।

शाइस्ता०:-ख़ैर, अव्वल शर्त मैंने बतला ही दी। दोयम यह कि जिन २ क़िलों को बादशाह ने फ़तह कर लिया है वे सब बादशाह के क़ब्ज़े में रहेंगे। सोयम यह कि सिंहगढ़ वग़ैरः और दूसरे क़िले भी छोड़ देना पड़ेंगे।

दूतः-कौन २।

शाइस्ता०:-यह दो चार दिन में बज़रिये ख़त मालूम हो जायगा। चहारुम यह कि और दीगर क़िले जो शिवाजी अपने क़ब्ज़े में रक्खेंगे वह बतौर जागीर होंगे। और उन पर ख़िराज देना पड़ेगा।

दूतः-जो आज्ञा। परन्तु जब तक संधि स्थापित न हो जाय लड़ाई बंद रहना चाहिये।

शाइस्ता०:-हर्गिज़ नहीं। दग़ाबाज़ और फ़रेबी मरहटों का मैं कभी यक़ीन नहीं करता। यह ग़ैरमुमकिन है कि सुलहनामे तक हम लड़ाई बंद रक्खें और उन्हें नुक़सान न पहुँचावें।

दूतः-एवमस्तु। अच्छा तो अब आज्ञा दीजिये।

[परदे का गिरना]

दूसरा दृश्य

बाटिका

[सरयूबाला का एक टोकरी में हार फूल लिये आना]

(गाना)

कैसा सुन्दर है बाग सुहाना,
बेला खिला, जुही खिली, कैसा...
चम्पा, चमेली, दोना मरवा, गुलतुर्रा, गुलशब्बो,
गुलनरगिस अधिक सरसाना, कैसा...
अरुणाई रवि की पुष्पन पर, है छाई, सुखदाई,
तहां पवन बहे विधि नाना, कैसा...

[रघुनाथराव का आना]

रघु०ः–भद्रे ! कल रात को यह हार इसी बाटिका में पड़ा पाया था । वही इस समय देने आया हूं । इस ढिठाई को क्षमा करना । यदि आज्ञा हो तो पहनाकर अपना जीवन सफल करूं ।

[सरयूबाला का कुछ उत्तर न देना । रघुनाथ का हार पहना देना] **अब मुझे बिदा करो ।**

सरयू०ः–क्यों, क्या आजही आप जायँगे ? महाराज के प्रश्न का उत्तर मिल गया ?

रघु०ः–अधिक कैसे ठहर सकता हूं । मैं दूसरे का नौकर हूं । आज दो दिन मुझे आये हो गये । प्रभु के प्रश्न का उत्तर भी मिल गया । वहां मेरी राह देखी जा रही होगी ।

सरयू०:-पिताजी ने क्या उत्तर दिया ?

रघु०:-उन्होंने कहा कि भगवती की आज्ञा है कि "म्लेच्छों से युद्ध में विजय परन्तु स्वधर्मियों के साथ युद्ध करने में पराजय होगी।"

सरयू०:-परन्तु देखो स्वामी ! प्रीति बढ़ाकर दुख न देना। इस दासी को भूल न जाना। अवकाश मिलने पर अवश्य सुध लेना। बिना तुम्हारे एक पल एक वर्ष के समान बीतेगा।

रघु०:-कदापि नहीं—याद रक्खो, जब तक जीवित रहूंगा इस मोहिनीमूर्ति को क्षण भर के लिये भी हृदय से दूर न होने दूंगा। अवकाश मिलने पर तुरन्त उपस्थित हूंगा।

[सरयूबाला का रघुनाथ को फूल की माला पहनाना]

सरयू०:-प्राणेश्वर ! इस हार की लाज अब तुम्हारे हाथ है।

(गाना)

[तर्ज:-तोरी इतनी चुनरिया...]

रघु०:-तोरी मदभरी अखियों ने मन हर लीनो,
याहि हार ने सुंदरिया के मोहे बसकीनो, तोरी...

सरयू०:-चरण कमल के दर्शन करके,
भाग्य हमारे आज हैं जागे।
तन मन धन प्रेम सहित अर्पण है,
इन चरणन के आगे, तोरी...

[दोनों का जाना]

[परदे का उठना]

तीसरा दृश्य

जंगल

[महाराज शिवाजी का एक ब्राह्मण के साथ आना]

शिवा०:–कहो बरात निकालने की आज्ञा मिल गई?

ब्राह्म०:–हां, मिल गई।

शिवा०:–परवाना ले लिया?

ब्राह्म०:–हां, ले लिया।

शिवा०:–विवाह कब है?

[चांदखां का आना और एक वृक्ष की आड़ मे छिप जाना]

ब्राह्म०:–कल।

शिवा०:–कितने आदमियों की आज्ञा मिली है?

ब्राह्म०:–बाजा बजानेवाले दस, और अस्त्रधारी तीस। बस इससे अधिक की आज्ञा नहीं है।

शिवा०:–यही बहुत है। परन्तु समय कौन सा है।

ब्राह्म०:–एक पहर रात बीते।

शिवा०:–बरात दुर्ग के पास होकर जायगी–याद है ना?

ब्राह्म०:–हां याद है।

शिवा०:–जहां तक सम्भव हो स्वजातियों और कुटुंबियों ही को इकट्ठा करना।

[चांदखां का पेड़ की आड़ से तीर चलाना। तीर का शिवाजी के कवच से टकराकर टूट जाना। चांदखां का सामने आकर बर्छा चलाना। बर्छे का भी टूट जाना। शिवाजी का कमर से कटार निकालकर चांदखा के कलेजे में भोंक देना। चांदखां का मरजाना]

शिवा०:—शाइस्ताखां ! देख, महाराष्ट्रों की बुराई करने का यह पहला फल है। भगवती की कृपा से दूसरा फल कल मिलेगा।

ब्राह्म०:—महाराज ! अब क्या होगा ? इस बात के प्रकट होते ही सब किया कराया मिट्टी में मिल जायगा।

शिवा०:—नहीं, कोई चिन्ता नहीं। चांदखां आज सभा में अपमानित हुआ था। कई दिन तक सभा में न जाने से उस पर कोई संदेह न करेगा। आओ यह मृत देह इस कुएं में छोड़ दें।

[परदे का गिरना]

चौथा दृश्य

[राजा यशवन्तसिंह बैठे हैं । सहेलियां गा रही हैं]

(गाना)

[तर्जः—जाओ जी जाओ बड़े दान के......]

जाओ जी जाओ बड़े स्वार्थी कहलानेवाले ।

जग को नहकानेवाले, गौरव गँवानेवाले, पापी बन जानेवाले, दुःख को बढ़ानेवाले, मुगलों के साथ रहकर वीरता दिखानेवाले...जाओ......

राजा को आज निज देश-गौरवशून्य देखा,

तजकर धन धर्म इन यवनों के आधीन देखा,

निरलज बन जानेवाले, कायर हो जानेवाले, क्षत्रिय कहलानेवाले, कुल को डुबानेवाले,

हा कुलघाती, शत्रु के साथी, दुख की थाती, निज सुख साथी, निज जननी कलपानेवाले...जाओ जी......

[सहेलियों का जाना । चोबदार का आना]

चोबदा०ः—महाराज शिवाजी के दूत महादेव न्यायशास्त्री आये हैं और महाराज का दर्शन किया चाहते हैं ।

यश०ः—आदरसहित ले आओ ।

[चोबदार का जाना । महाराज शिवाजी का दूत के भेष मे आना]

यश०ः—हमने तुम्हारे स्वामी का पत्र पढ़ा था, उसको भले प्रकार समझ भी लिया । इसके अतिरिक्त और कुछ कहना है ।

दूतः—और कुछ नहीं केवल खेद प्रकाशित करने आया हूं।

यश०ः—केवल पूना और चाकन दुर्ग छिन जाने ही से तुम्हारे महाराज ने खेद प्रकट किया है?

दूतः—वे दो दुर्गों के निकल जाने से खिन्न नहीं हैं। उनके पास तो असंख्य दुर्ग हैं।

यश०ः—तो फिर क्या मुग़लों से युद्धरूपी विपद् में फँसकर खेद कर रहे हैं?

दूतः—विपद् में पड़कर उन्हें खेद करने का अभ्यास नहीं।

यश०ः—फिर किस लिये खेद है?

दूतः—उनके दुख का कारण एक मात्र क्षत्रियों का दासत्व स्वीकार करना है। जिसने उदयपूर के राणा प्रतापसिंह के वंश में विवाह किया हो, जिसकी सुख्याति राजस्थान में फैल रही हो, मारवाड़राज-मुकुट जिसके सिर पर विराजमान हो, सिपरा नदी के तीर जिसका पराक्रम देख औरंगज़ेब भयभीत हुआ हो, जिसके लिये गाँव २ में, मन्दिर २ में जय मनाई जाती हो, ऐसे हिन्दू धर्म के स्तम्भ का मुसलमानों की ओर से हिन्दुओं से लड़ना क्या खेद की बात नहीं है? क्षत्रिय-कुलर्षभ! मैं एक साधारण ब्राह्मण हूं, फिर दूत का काम करता हूं। मुझे अधिक ज्ञान नहीं है। यदि कोई अनुचित बात निकल गई हो तो क्षमा कीजियेगा, परन्तु क्या आपका यह काम हिन्दुओं को स्वतंत्र करने का है? क्या यह विजयपताका हिन्दुओं के स्वराज की फहरा रही है? महाराज आप ही विवेचना करें। आप राजपूत हैं। महाराष्ट्र

गण भी राजपूत हैं। पिता पुत्र का युद्ध सम्भव नहीं। स्वयं भवानी ने इसका निषेध किया है। एक मात्र राजपूतों का गौरव अनाथ भारतवर्ष का गौरव है। राजपूतों का यशोगीत हमारे यहां की स्त्रियां अभी तक गाती हैं। राजपूतों ही के आदर्श पर हम लोग अपने लड़कों को शिक्षा देते हैं। क्षत्रियकुल-तिलक! राजपूतों के रक्त से हमारे खड्ग लाल होने के पहले ही महाराष्ट्रों का लोप हो जाना बहुत अच्छा है। आप से लड़ाई करने की अपेक्षा राज्य को छोड़ हल चलाना हमारे लिये बहुत अच्छा है।

यश०:-प्रधान दूत! तुम्हारी कथनप्रणाली बड़ी रोचक है। किन्तु मैं दिल्लीश्वर के अधीन हूं। "महाराष्ट्रों से युद्ध करूंगा" यही प्रतिज्ञा मैं चलते समय कर चुका हूं। इसलिये युद्ध अवश्य करूंगा।

दूतः-इस प्रकार तो सैकड़ों स्वधर्मियों का नाश होगा। हिन्दू हिन्दुओं के सिर काटेंगे, ब्राह्मण ब्राह्मणों के हृदय में तलवार भोंकेंगे और क्षत्रिय क्षत्रियों का रक्त बहायेंगे।

यश०:-केवल दिल्लीश्वर की जय के हेतु युद्ध नहीं कर रहा हूं। इसका एक और भी कारण है।

दूत :- वह क्या?

यश०:-यही कि शिवाजी विद्रोही हैं। वह जिस विषय को आज स्वीकार करते हैं कल उसको भंग कर देते हैं।

दूत :- महाराज! सावधान, झूठी निन्दा आपको शोभा नहीं देती। शिवाजी कब हिन्दुओं को वचन देकर

पलट गया ? उसने कब क्षत्रियों से किये हुए प्रण को भङ्ग किया ? देश में सैकड़ों गाँव और हज़ारों मन्दिर हैं। आप अनुसंधान करके देख लें, शिवाजी प्रतिज्ञा पालन करता है या नहीं, गोवत्स-आदि की रक्षा करता है या नहीं ? फिर मुसलमानों का साथी बनकर स्वधर्मियों के साथ युद्ध कैसा ? जेता और विजितों में परस्पर प्रेम किस देश में है ? सिंह अपने नखों से सांप पर आक्रमण करके उसे मुर्दा समझकर छोड़ दे तो क्या सर्प का अवसर पाकर उसे डँस लेना विद्रोहाचरण है ? कदापि नहीं। यह तो स्वाभाविक रीति है। यदि कुत्ता ख़रगोश को पकड़ना चाहे और वह जीवनरक्षा के लिये इधर उधर भांति २ की चतुरता करके भागने में सफल हो जाय तो ख़रगोश अराजक है ? कदापि नहीं। यह आत्मगौरव और आत्मरक्षा मात्र है। जगदीश्वर ने मनुष्य को आत्मरक्षा की जो शिक्षा दी है क्या उससे मनुष्य वंचित किया जा सकता है ? हमारे निकट प्राणों की प्राणेश्वरी जीवनाधार तो स्वाधीनता है। जो मुसलमान सैकड़ों वर्ष से हिन्दू धर्म और हिन्दुओं के संहार में तत्पर हैं, क्या उन्हीं का सहायक होना हमें शोभा देता है ? आपसे मेरा नम्र बिवेदन है कि हिन्दुओं की रक्षा करनेवालो और विशेषतः शिवाजी की आप निन्दा न करें।

यश०:-दूतवर ! यदि कुछ कटु वाक्य मेरे मुँह से निकल गये हों और उनसे आपको दुःख हुआ हो तो

क्षमा कीजियेगा। हमारे कहने का मतलब यह है कि राजपूतगण भी स्वाधीनता की अभिलाषा रखते हुए युद्ध के सिवाय और कुछ नहीं जानते। महाराष्ट्रगण भी उसी रास्ते पर चल रहे हैं।

दूतः–महाराज ! राजपूतों में पुरातन स्वाधीनता है। वे बहुत धन रखते हैं। उनके पास दुर्गों की कमी नहीं है। राजधानी भी उनकी सुन्दर और सुदृढ़ है। उनमें सैकड़ों वर्ष की अपूर्व रणचातुरी है। परन्तु महाराष्ट्रगण के पास इनमें से क्या है? ये तो सदा के दरिद्री और चिरपराधीन हैं। इनके निकट तो यह पहली ही रणचातुरी है। आपकी सेना आक्रमण करने पर पुरानी रीति पर युद्ध करती है और स्मरणीय पुरातन तेज और विक्रम का प्रकाश करती है। असंख्य राजपूत सैनिक दिल्लीश्वर की सेना को सामने से दूर भगा देते हैं। परन्तु हमारे देश पर आक्रमण होने से हम क्या कर सकते हैं? न तो हमारी पुरानी रण-शिक्षा है और न सैनिक ही इतने हैं। जो हैं भी उन्होंने युद्ध कभी देखा ही नहीं। दिल्ली की सेना काबुल, पंजाब, अयोध्या इत्यादि सैकड़ों देशों के बड़े २ वीरों के साथ लड़कर अनुभव प्राप्त कर चुकी है। उसके सामने दरिद्री महाराष्ट्रसैन्य क्या कर सकती है। जगदीश्वर महाराष्ट्र जाति को दीर्घजीवी करे। आप हिन्दुओं में श्रेष्ठ हैं। क्या हिन्दूगौरव-साधन में आपको संदेह होना चाहिये। हिन्दूधर्म की जयप्राप्ति के लिये अवश्य आप इच्छा करते हैं।

शिवाजी की भी कोई दूसरी इच्छा नहीं है। यदि इसमें आप शिवाजी का साथ देने में असमर्थ हैं तो स्वयं ही यह कार्य कीजिये। आप इस देश का राजा होना स्वीकार कीजिये, मुसलमानों को परास्त कीजिये और हिन्दू स्वाधीनता पुनः स्थापित कीजिये। आप स्वीकार करें तो अभी दुर्ग-द्वार खोल दिये जायँ। प्रजा आपको कर देगी, शिवाजी से अधिक बलवान् और दूरदर्शी समझेगी। शिवाजी भी संतुष्टचित्त से आपके एक सैनिक का पद ग्रहण करेंगे।

यश०:-परन्तु मारवाड़ और महाराष्ट्र पास २ नहीं हैं। इसलिये एक राजा के अधीन दोनों का रहना असम्भव है।

दूतः-तो आप अपने किसी सुयोग्य पुत्र अथवा सेनापति को नियुक्त कीजिये। शिवाजी किसी क्षत्रिय राजा के अधीन कार्य कर सकता है परन्तु किसी क्षत्रिय से युद्ध न करेगा।

यश०:-इस विपदकाल में कोई ऐसा नहीं देख पड़ता जो औरंगज़ेब से लड़कर देश की रक्षा करे।

दूतः-फिर जो ऐसा महान् कार्य कर रहा है उसकी आप सहायता कीजिये। आपके आशीर्वाद से शिवाजी अवश्य ही स्वदेश और स्वधर्म के गौरव-साधन में कृतकार्य होंगे।

यश०:-द्विजवर! तुम्हारी तर्कना अलंघनीय है। परन्तु दिल्लीश्वर मुझसे स्नेह करता है, यही कारण है कि उसने मुझे इस कार्य के लिये नियुक्त किया

है। फिर उसके साथ विश्वासघात करनां क्या भद्रोचित है?

दूतः-वही तो दिल्लीश्वर जिसने हिन्दुओं का नाम क़ाफ़िर रक्खा है, जिसने जजिया जारी किया है, जो देश २ में हिन्दूमन्दिरों और देवालयों का अपमान करता है। क्या यह भद्रोचित है? काशी ऐसी पवित्र नगरी में विश्वनाथ के मन्दिर को तोड़कर उसके पत्थरों से मसजिद बनवाना क्या भद्रोचित है?

यश०:-द्विजश्रेष्ठ! अब और मत कहिये। आज से शिवाजी हमारे और हम शिवाजी के मित्र हुए। आज से हमारा प्रण शिवाजी के प्रण के समान है। इस समय तक हिन्दू-विरोधी दिल्लीश्वर के विरुद्ध जिसने युद्ध किया है वह महाशय कहां हैं? एक बार उन्हें गले लगाकर मैं हृदय के संताप को दूर किया चाहता हूं।

[शिवाजी का बनावटी भेष उतार डालना]

दूतः-महाराज! छद्मवेष धारण करने का अपराध क्षमा कीजिये। यह दास ब्राह्मण नहीं क्षत्री है। नाम भी महादेव नहीं शिवाजी है।

[यशवन्तसिंह और शिवाजी का गले मिलना]

शिवा०:-महाराज! कल पूना से दो चार कोस दूर ही रहने में भला है।

यश०:-क्यों, क्या कल तुम पूना को जीतने की चेष्टा करोगे।

शिवा०:-नहीं! एक विवाह-कार्य का सम्पादन करना

है। आपके रहते हुए कुछ व्याघात हो जाने की सम्भावना है।

यश०:—अच्छा दूर ही रहूंगा। [हँसकर] विवाहसंस्कार के मंत्रादि क्या न्यायशास्त्री महाशय को याद हैं?

शिवा०:—अभी तो कल ही मेरी शास्त्रविद्या देखकर दिल्ली का सेनापति शाइस्ताखां विस्मित हो चुका है। कल बिदा होना भी भले प्रकार जान लेगा। अच्छा अब अधिक देर हो चुकी है, आज्ञा हो तो जाऊं।

[दोनों का गले मिलना]

[परदे का गिरना]

पांचवां दृश्य

रास्ता

[आगे २ शिवाजी, उनके पीछे मूरेश्वरजी तथा अन्य तीन कर्मचारियों का आना]

मूरेश्वर०:-भगवती की जय हो। आप इतनी देर बाद सकुशल लौट तो आये। हम सब को बड़ी चिन्ता थी।

शिवा०:-भला आपके पुण्यप्रताप से किस विपद से उद्धार नहीं हुआ।

मूरे०:-सब ठीक हो गया?

शिवा०:-हां। सब।

मूरे०-आज ही रात को विवाह है न?

शिवा०:-आज ही।

मूरे०:-शाइस्ताखां तो कुछ नहीं समझ सका। तीक्ष्ण-बुद्धि चांदखां ने तो कुछ नहीं समझ लिया?

शिवा०:-शाइस्ताखां तो भयभीत हो शिवाजी से संधि करने की प्रतीक्षा कर रहा था। योद्धा चांदखां अब इस संसार में नहीं है।

मूरे०:-राजा यशवन्तसिंह?

शिवा०:-आपने जो युक्तियां बताई थीं उन्हीं से यशवन्त-सिंह विचलित हो गये। जाकर देखा तो वास्तव में उन्हें किंकर्तव्यविमूढ़ पाया।

मूरे०:-भगवती की कृपा से आपने एक ही रात में अकेले जैसे कार्य का साधन किया वह सैकड़ों मनुष्यों

के किये भी नहीं हो सकता था। आधीरात के समय शत्रु के घर अकेले जाना साधारण कार्य नहीं है।

शिवा०:—मूरेश्वर! विपदों से यदि अब तक भय करता तो वही साधारण जागीरदार बना रहता। विपद् में भय करने से यह कार्य कैसे सिद्ध होता।

मूरे०:—वीरश्रेष्ठ! आपकी जय अवश्य ही है। स्वयं भवानी आपकी सहायता कर रही हैं।

शिवा०:—यह सब होते हुए भी आज एक बड़ी विपद् में फँस गया था।

मूरे०:—[आश्चर्य से] किसमें ?

शिवा०:—आपने ऐसे मूर्ख को संस्कृत के श्लोक सिखाये थे जो अपना नाम तक लिखना नहीं जानता। भला उसे श्लोक कब याद रह सकते हैं।

मूरे०:—तब क्या हुआ ?

शिवा०:—कुछ नहीं। शाइस्ताखां की सभा में न्यायशास्त्री महाशय ने, सब श्लोक भूल जाने पर भी, कुछ इधर उधर की बातें और कुछ उनके अर्थ, जो याद थे, कहकर काम निकाला।

मूरे०:—आप जैसे बुद्धिमान् मनुष्य के लिये सब कुछ सहज है।

शिवा०:—अच्छा तो अब आज्ञा दीजिये।

पेशवाजीः—क्या आपने यह निश्चय कर लिया है कि इस लड़ाई में आपके साथ कोई भी नहीं जाने पावेंगे ? महात्मन्! विपद्-काल में कब हम लोग अलग रहे ?

शिवा०:–पेशवाजी ! क्षमा कीजिये, अधिक अनुरोध न कीजिये । आपका साहस, विक्रम, और विज्ञता हम से छिपी नहीं है । किन्तु भवानी के सम्मुख हमने ऐसी ही प्रतिज्ञा की है । आज मैं ही इस कार्य का साधन करूंगा । नहीं तो प्राण त्याग दूंगा । आप जयलाभ होने के लिये आशीर्वाद दीजिये । यदि कार्यसाधन में मेरे प्राण चले जायँ तो आप लोगों से मेरी यही विनय है कि आप तीनों के होते महाराष्ट्र देश को कोई हानि न पहुँचने पावे । यदि आप लोग भी मेरे साथ प्राण दे देंगे तो देश किसके बुद्धि-बल पर रहेगा, स्वाधीनता को कौन स्थापित करेगा, हिन्दू-गौरव की कौन रक्षा करेगा ? प्रिय मूरेश्वर, आपने पिताजी के निकट कार्य किया है, आशीर्वाद दीजिये । ब्राह्मण का आशीर्वाद कभी खाली नहीं जाता । [तन्नजी और यशजी से] बाल्य-सुहृद ! आज्ञा दीजिये ।

तन्नजीः–किस अपराध के कारण आप मुझे संग नहीं ले चल रहे हैं । भला किस समय और कौन सा दुर्ग विजय करने में यशजी, बाजी, और यह दास साथ नहीं रहे । बाजी प्रभु का कार्य करने में हत हुआ । हम दोनों की भी उससे अन्य कोई इच्छा नहीं है । आज्ञा दीजिये, हम दोनों भी आपके साथ चलें । जिसमें जय-लाभ के समय प्रभु को आनन्द में देख आनन्दित होवें ।

शिवा०:-भाई! "मोरे नाहिं अदेय कछु तोरे", शीघ्र रण के लिये तैयारी करो।

[रघुनाथ का प्रवेश]

शिवा०:-रघुनाथ! चिन्तित क्यों हो।

रघु०:-तोरण दुर्ग से पत्र इत्यादि लाने पर प्रभु ने पुरस्कार देने को.....

शिवा०:-तो क्या आज इस कठिन समय में वह पुरस्कार चाहते हो?

रघु०:-केवल यही कि मुझे भी इस युद्ध में सम्मिलित होने की आज्ञा मिले।

शिवा०:-राजपूत बालक! क्यों अपनी ही इच्छा से इस संकट में पड़ते हो। तुम बालक हो, तुम्हारा अधिकार प्राण देने का नहीं है।

रघु०:-स्वामिकाज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ भुवन दस चारी॥
तजउँ प्राण रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे॥
राजन्! आपके साथ रहकर प्राण दूं, इससे अच्छी मेरे लिये और कौनसी बात हो सकती है।

शिवा०:-अच्छा जाओ, शीघ्र तैयार होकर आओ। [तानजी और यशजी से] आप भी चलने की शीघ्र तैयारी कीजिये।

[शिवाजी का एक ओर और सबका दूसरी ओर जाना]

[परदे का उठना]

छठा दृश्य

क़िले का बाहरी भाग

[बरात का आना। बरातियों में से महाराज शिवाजी इत्यादि का अलग हो एक ओर छिप जाना। बरात का चला जाना। भीतर से चोर २ का शब्द सुनाई देना। परदे का बदलना। क़िले के भीतर का एक दृश्य। घबड़ाये हुए शमशेरख़ाँ का हाथ में तलवार लिये इधर उधर घूमते दिखाई देना। महाराज शिवाजी का आना]

शिवा०:–युवक ! रास्ता छोड़ दो। इस समय तुम्हारे पिता का रक्त मेरी तलवार में लगा है–मैं तुम्हारी हत्या करना नहीं चाहता।

[शमशेरख़ां का बिना कुछ उत्तर दिये महाराज शिवाजी पर तलवार चलाना। रघुनाथ का पीछे से आकर शमशेरख़ां को कटार से मार डालना]

शिवा०:–हवलदार ! तुम्हारा यह कार्य हमें जन्म भर नहीं भूलेगा।

[महाराज शिवाजी और रघुनाथ हवलदार का जाना। परदे का बदलना। शाइस्ताख़ां का रस्सी के सहारे नीचे उतरते दिखाई देना। महाराष्ट्र सैनिकों का प्रवेश। एक सैनिक का शाइस्ताख़ां की उँगली खड्ग से काट डालना। मुग़ल सैनिकों का कोलाहल। महाराज शिवाजी का प्रवेश]

शिवा०:-वीरो! आज तुमने अपनी वीरता का पूर्ण परिचय दिया है। अब व्यर्थ और हत्या मत करो। हमारा कार्य सिद्ध हो गया। भीरु शाइस्ताखां भाग गया। अब हम से लड़ने का साहस नहीं कर सकता।

[परदे का गिरना]

सातवां दृश्य

रास्ता

[जनार्दन और रघुनाथ का आना]

जना०:-वत्स रघुनाथ ! कहो सब कुशल तो है ? युद्ध की क्या अवस्था है ?

रघुनाथः-शाइस्ताखां हार मान कर दिल्ली लौट गया। शिवाजी के पिता का देहान्त हो गया। उनके क्रिया कर्म से निवृत्त होने के बाद, रायगढ़ पहुँच, राजा की उपाधि धारण कर शिवाजी ने देश के शासन का बहुत उत्तम प्रबन्ध किया है। दिल्ली-श्वर ने शिवाजी को परास्त करने के लिये एक बड़ी सेना के साथ महाराज जयसिंह को भेजा है। भगवती की भविष्यवाणी याद कर इस समय महाराज को बड़ी चिन्ता हुई है। सम्भव है वह महाराज जयसिंह के साथ संधि कर लें। आपके लाने की आज्ञा हुई थी, इसी से सेवा में उपस्थित हुआ हूं। साथ में पालकी भी लेता आया हूं। यदि अवकाश हो तो दो चार दिन के लिये चले चलिये।

जना०:-मैं बड़ी प्रसन्नता से चलने को तैयार हूं।

रघु०:-तो शीघ्र यात्रा की तैयारी कीजिये।

जना०:-वत्स ! मेरी एक अभिलाषा है, क्या तुम वह पूरी कर सकते हो ?

रघु०:-जो आज्ञा हो। दास सेवा के लिये सदैव उपस्थित है।

जना०:-सुनो वत्स ! तुम्हारे कुल से मैं अपरिचित नहीं हूं। तुम अपने वंश के सुयोग्य और होनहार युवक हो। सरयूबाला को मैंने कन्या कह कर ग्रहण किया था। आज तुम्हें भी पुत्र कह कर ग्रहण करता हूं। बहुत दिन से मेरी यह इच्छा थी कि किसी सुयोग्य पात्र को सरयूबाला सौंप दूं। ईश्वर ने आज वह पूर्ण की। अस्तु, अब यही इच्छा है कि इस भावी युद्ध के बाद तुम्हारे समान उपयुक्त पात्र को सरयूबाला सौंप कर मानवलीला संवरण करूं। जगतपिता तुम्हें और सरयूबाला को सुख से रक्खें।

रघु०:-पिता ! आशीर्वाद दीजिये, जिससे यह दरिद्र सैनिक आपकी आज्ञा पालन करने में समर्थ हो। रघुनाथ एक दरिद्र सैनिक है। न उसके पास इस समय नाम है और न धन। केवल उसे आपकी कृपा और आशीर्वाद पर भरोसा है।

जना०:-अच्छा अब चलना चाहिये। यात्रा की तैयारी भी करना है।

[दोनो का जाना]

[परदे का उठना]

आठवां दृश्य

महाराज जयसिंह का भवन

[महाराज जयसिंह बैठे हैं । सहेलियों का गाना और नाचना]

(गाना)

रहे राजा मगन में प्रजा सगरी,
अन, धन, यश, सुख दिन २ दूना,
आज्ञा माने तिहारी नगरी। रहे राजा......
राजा जयसिंह होहु चिरायू, धर्म की गहि राखो डगरी। रहे राजा...
शत्रु विजय नहीं पावें तुम पे, रक्षा देव करें तुम्हरी। रहे राजा ...

[सहेलियों का जाना । चोबदार का आना]

चोबदारः-महाराज शिवाजी द्वार पर खड़े हैं और महाराज से मिला चाहते हैं ?

[आगे २ महाराज जयसिंह का और पीछे दूत का जाना । कुछ देर बाद महाराज जयसिंह का महाराज शिवाजी को अपने साथ आदरसहित लेकर आना]

जय०:-राजन्! आपने मेरे यहां पधार कर मुझे सम्मानित किया। इसे आप अपना ही घर समझें।

शिवा०:-राजन्! यह दास कब आपकी आज्ञा के पालन से विमुख हुआ ? आपने रघुनाथ पंत से मेरे आने को कहा था । दास उपस्थित हो गया। मैं भी आपके कृपापूर्ण व्यवहार से सम्मानित हुआ हूं।

जय०:–हां, रघुनाथ न्यायशास्त्री से जो कुछ मैंने कहा था, वह मुझे याद है। दिल्लीश्वर ने यथेष्ट सम्मान तथा रक्षा करने का वचन दे दिया है। मैं भी आप से प्रतिज्ञा करता हूं कि दिल्ली में आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने पावेगा। राजपूतों की कही हुई बात कभी झूठी नहीं होती।

शिवा०:–बाल्यकाल ही से आपके गौरव-गीत को गाकर मुझे बड़ा आनन्द मिलता था। आज आपको उसी प्रकार पा रहा हूं। वह गीत झूठे नहीं थे। परन्तु क्या ऐसे राजपूत को यवनों की अधीनता स्वीकार करना चाहिये?

जय०:–इसका कारण बड़ा मर्मभेदी है। राजपूत सहजही में अधीनता स्वीकार नहीं करते। जब तक हो सका युद्ध किया। परन्तु ईश्वर की माया! अन्त में पराधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

शिवा०:–फिर जिसके साथ वैरभाव है उसके कार्य-साधन में तत्पर होना कैसा?

जय०:–जब दिल्ली का सेनापति होना स्वीकार किया था तभी कार्य-साधन के लिये भी वचनदान दिया था। इसी लिये आज तक उसका पालन करता हूं।

शिवा०:–क्या सब के साथ सभी अवसरों पर सत्यपालन करना चाहिये? जो हमारे देश और धर्म का शत्रु है उसके साथ सत्य-सम्बन्ध कैसा?

जय०:–आप क्षत्रिय होकर ऐसी बात कहते हैं? क्या कभी राजपूतों को ऐसी बात कहना चाहिये। राजपूतों का इतिहास पढ़िये, सैकड़ों वर्ष तक

मुसलमानों के साथ युद्ध करते रहने पर भी कभी सत्य को नहीं छोड़ा। इस पराधीनता के समय में भी हमारा गौरव, स्वाधीनता नहीं, सत्य-पालन ही है। क्षत्रियराज टोडरमल और मानसिंह ने दिल्लीश्वर के साथ रहकर स्वधर्मियों के साथ युद्ध किया परन्तु कभी विश्वासघात नहीं किया। महाराष्ट्रराज ! राजपूतों का वचन ही संधि-पत्र है। औरों के लिये संधिपत्रों का उल्लंघन करना सम्भव है परन्तु अपने वचन का उल्लंघन एक राजपूत के लिये असम्भव है।

शिवा०ः-महाराज यशवन्तसिंह हिन्दू धर्म के प्रधान प्रहरी हैं। उन्होंने भी मुसलमानों के लिये हिंदुओं से युद्ध करना अस्वीकार किया है।

जय०ः-वीरशिरोमणि यशवन्तसिंह हिन्दू धर्म के रक्षक हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। वे मारवाड़ देश की मरुभूमि के योद्धा हैं। उनकी मारवाड़ी सेना के समान जगत में दूसरी सेना साहसी नहीं है। यदि यशवन्तसिंह उसी मरुभूमि के राजा कहलाते हुए मारवाड़ी सेना द्वारा हिन्दू स्वाधीनता की रक्षा के लिये उद्योग करते तो हम उनको अवश्य साधुवाद देते। यदि वे औरंगज़ेब को परास्त कर दिल्ली में हिन्दू पताका फहराते तो हम उनको सम्राट कह कर सम्मानित करते। और यदि वे स्वदेश तथा स्वधर्म के रक्षार्थ रणभूमि में अपने प्राण दे देते तो हम उनको देवता के समान पूजते। परन्तु जिस दिन से वे दिल्लीश्वर के सेना-

पति बने उसी दिन से मुसलमानों के कार्यसाधन में तत्पर हो जाना चाहिये था। जिसका साथ दिया उसको छोड़ना क्षत्रिय-धर्म के प्रतिकूल है।

शिवा०:–क्या हिन्दू धर्म की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म नहीं है? हिन्दुओं को भाई समझ कर उनकी सहायता करना क्या क्षत्रियों का कर्म नहीं है?

जय०:–हमारा मतलब यह नहीं है। जिस रीति से वह इस कार्य में सम्मिलित हुए वह उचित नहीं है। उन्हें चाहिये था कि औरंगज़ेब का साथ छोड़कर आपका साथ देते। ऐसा करने से वे सारे संसार और ईश्वर के निकट यशस्वी होते। आप जिस प्रकार स्वाधीनता की चेष्टा करते हैं उसी प्रकार उन्होंने क्यों नहीं की? सम्राट के साथ रह कर गुप्त भाव से विरुद्धाचरण करना कपटता है। क्षत्रिय-राज! कपटाचरण क्षत्रियों का कार्य नहीं है।

शिवा०:–यदि वे हमारे साथ प्रकट रूप में मिल जाते तो सम्भव था औरंगज़ेब किसी दूसरे सेनापति को भेजता जिससे लड़कर हम दोनों ही मारे जाते।

जय०:–युद्ध में प्राण त्याग करना क्षत्रियों का धर्म है। परन्तु कपटाचरण सर्वथा विरुद्ध है।

शिवा०:–जिस हिन्दू गौरव का स्वप्न मैं बाल्यकाल से देख रहा हूँ, जिस के कारण मैंने सैकड़ों युद्ध किये हैं, उस गौरव और स्वाधीनता की रक्षा क्या प्राण त्यागने से होसकती है? यदि जीवनदान से हमारा उद्देश्य सिद्ध होजाय और हिन्दू-स्वाधीनता, हिन्दू गौरव फिर स्थापित हो जाय तो भवानी की

सौगन्ध इसी समय अपने हृदय को चीर.........

जय०:-सत्यपालन यदि सनातनधर्म-शिक्षा नहीं है तो क्या सत्य-लंघन है? यदि वीरों के रक्त से स्वाधीनता का बीज अंकुरित नहीं हुआ तो क्या वीरों की चतुरता से होगा?

शिवा०:-जब मैं लड़कपन में कंकण देश की पर्वतमालाओं और उपत्यकाओं में घूम रहा था, स्वयं भवानी ने मुझे स्वाधीनता स्थापन करने का स्वप्न में उपदेश किया था। उसी उपदेशानुसार अभीतक कार्य किया है। क्षत्रियराज, क्या यह उपदेश मंद है?

जय०:-राजन्! आपके महदुद्देश्य से बढ़कर दूसरे उद्देश्य को मैं नहीं जानता। मैंने शत्रुओं के सामने भी आपके उद्देश्यों की बड़ाई की है। अपने पुत्र रामसिंह को आप ही का उदाहरण देकर शिक्षा दी है। शिवाजी! तुम्हारा स्वप्न निरा स्वप्न ही नहीं है। चारों ओर जब आंख उठाकर देखता हूं तब यही देख पड़ता है कि मुग़लराज्य अब और नहीं रह सकता। मुसलमानों का राज्य कलङ्क-राशि से कलुषित हुआ है, विलासप्रियता से जर्जरित हो उठा है, अत्याचारित हिन्दुओं के शाप से शापित होगया है। बालू की दीवार की भांति अधिक नहीं ठहर सकता, शीघ्र ही पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। महाराष्ट्र जीवन अंकुरित हो रहा है, जिसके तेज का विकास सारे भारत में फैल जायगा। शिवाजी! आपका स्वप्न, स्वप्न ही नहीं है। भगवती ने आपको झूठी उत्तेजना नहीं दी है।

शिवा०:-महाराज! फिर आप उस गिरते हुए भवन के एकमात्र स्तम्भ क्यों बने हुए हैं।

जय०:-सत्यपालन क्षत्रिय धर्म है। मैं उसी का पालन कर रहा हूं।

शिवा०:-अच्छा आप सत्यपालन कीजिये। कपटाचारी औरंगज़ेब के निकट धर्माचारी जयसिंह को देख देवता भी विस्मित हो साधुवाद देते हैं। मैं अभी औरंगज़ेब के निकट सत्यपालन नहीं कर सकता। यदि मैं बुद्धिबल से भी स्वदेश की उन्नति साधने में फलीभूत हो जाऊं तो लोग मेरी निन्दा नहीं करेंगे।

जय०:-क्षत्रियराज! योद्धा के निकट चालाकी सर्वदा निन्दनीय है। महाराष्ट्र गौरव अनिवार्य है। उनका बाहुबल प्रतिदिन बढ़ता ही जायगा। वह दिन दूर नहीं है जब महाराष्ट्रगण भारतवर्ष के अधीश्वर हो जायँगे। परन्तु शिवाजी! आज आप जो शिक्षा दे रहे हैं उसे लोग कभी नहीं भूलेंगे। हमारे कहने का आप बुरा न मानें। आज आप शहरों का लूटना सिखा रहे हैं। यह अवश्य है कि आपको इससे जय प्राप्त होगी परन्तु अन्त में आपके बाद लोग इसी को अपना प्रधान कार्य समझ बैठेंगे। उस समय भारतवर्ष में लूट मार के सिवाय और कुछ न रह जायगा। आज आप सम्मुख-युद्ध की अपेक्षा लुक कर लड़ना सिखा रहे हैं। इसका फल यह होगा कि लोग सम्मुख युद्ध कर ही न सकेंगे। आप जिस जाति के नेता

हैं वह जाति भारतवर्ष की शासक होगी। अतः आप उसे अच्छी शिक्षा दीजिये। इस मंद शिक्षा का प्रभाव सौ वर्ष बाद सारे भारतवर्ष में फूट निकलेगा। आप हिन्दुओं में श्रेष्ठ हैं। आपके महान् उद्देश्य की मैं बारंबार प्रशंसा करता हूं। परन्तु आप इस वृद्ध, बहुदर्शी राजपूत की शिक्षा ग्रहण कीजिये। चालाकी छोड़ दीजिये। यदि आपही धर्म और सत्य की शिक्षा न देंगे तो और कौन देगा। महाराष्ट्र-शिक्षा-गुरु! सावधान, आपके प्रत्येक कार्य का फल दीर्घकालिक और भारतव्यापी होगा।

शिवा०:—आपका उपदेश शिरोधार्य है। परन्तु यदि आज हम औरंगज़ेब की अधीनता स्वीकार करें तो फिर शिक्षा कौन देगा?

जय०:—जय पराजय स्थिर नहीं। आज मुझे जय प्राप्त हुई है, कल आपको भी प्राप्त हो सकती है। आज आप औरंगज़ेब के अधीन हैं तो कल स्वाधीन भी हो सकते हैं। क्षत्रियराज! निश्चिंत रहिये, महाराष्ट्र-गौरव और हिन्दू-प्रधानता अनिवार्य है। वृद्ध के वचन को ग्रहण कीजिये। मुग़लों का राज्य अधिक समय तक नहीं ठहर सकता। देश देशान्तर में हिन्दूगौरव के साथ ही साथ आपके गौरव और नाम की प्रतिध्वनि सुनाई देगी।

शिवा०:—तथास्तु। धर्मात्मन्! मैंने आत्म-समर्पण किया। अब मैं आपके साथ कभी युद्ध न करूंगा।

[परदे का गिरना]

नवाँ दृश्य

रुद्रमंडल दुर्ग का बाहरी भाग

[महाराज शिवाजी, तन्नजी, मालश्री, रघुनाथजी हवलदार तथा महाराष्ट्र सैनिकों का प्रवेश]

शिवा०:—क्या शत्रु हमारे आक्रमण को जान गये । [संकेत करके] इस प्रकार मशालों के जलने की क्या आवश्यकता ?

तन्नजी:—अवश्य । राजन् ! अभी लौट चलने का समय है । यदि आज दुर्ग हस्तगत न हुआ तो कल हो जायगा । आज के साहस में सर्वनाश होने की संभावना है ।

शिवा०:—[गंभीर स्वर से] कदापि नहीं । महाराज जयसिंह को जो वचन दिया है उससे कदापि नहीं फिरूंगा । इसी रात में रुद्रमंडल दुर्ग विजय करूंगा नहीं तो प्राण त्याग करूंगा । शीघ्र चलो, प्राचीर तक पहुँचने का कोई गुप्त मार्ग ढूँढ़ निकालें ।

[सबका जाना । परदे का बदलना । रुद्रमंडल दुर्ग की प्राचीर का दृश्य । प्राचीर पर कुछ मुसलमान सैनिकों का दिखाई देना । महाराष्ट्रसैनिकों के साथ महाराज शिवाजी इत्यादि का आना]

शिवा०:—वीरो ! यही समय वीरता दिखाने का है ।

वीरगण ! आज समर-भूमि में जाना है तुम्हे ।
खड्ग प्यासा है रुधिर उसको पिलाना है तुम्हे ॥

सैन्य सम्राट को वीरत्व दिखाना है तुम्हे।
अपनी माता के सभी दुःख छुड़ाना है तुम्हे॥
यही सीढ़ी है स्वर्ग धाम में जाने के लिये।
यही गंगा है सिपाही के नहाने के लिये॥

["हर २ महादेव" का गगनभेदी शब्द गूंज उठना। महाराष्ट्रीय तथा मुसलमान सैनिकों का घमासान युद्ध। सहसा प्राचीर पर से "महाराज शिवाजी की जय" का कोलाहल सुनाई देना। सबका चकित हो उस ओर देखना। प्राचीर पर रघुनाथ का कवच पहने हाथ में. बर्छा लिये दिखाई देना। रघुनाथ का पठान-पताका को लात मारकर गिरा देना और उसके स्थान पर महाराष्ट्रीय पताका गाड़ देना। सबका एक स्वर से "महाराज शिवाजी की जय" का गगनभेदी नाद।

[परदे का गिरना]

यवनिकापतन

दूसरा अङ्क
पहला दृश्य

सभा

[महाराज शिवाजी और महाराज जयसिंह सिंहासन पर तथा अन्य वीरगण चारों ओर अपने २ स्थान पर बैठे हैं]

जय०ः–[हँसकर] जब से आपने दिल्लीश्वर का पक्ष लिया है, आप उनके दाहिने हाथ बन गये हैं। इस उपकार को दिल्लीश्वर कभी नहीं भूलेंगे। जय तो मानों आपके सामने हाथ बांधे खड़ी रहती है।

शिवा०ः–परन्तु वास्तव में यदि देखा जाय तो जहां महाराज जयसिंह हैं वहीं जय है।

जय०ः–बीजापूर को जीतने की हमें पूर्ण आशा थी, परन्तु इतनी शीघ्रता से नहीं। जब इस बात पर विचार करता हूं, बुद्धि स्थिर नहीं रहती। आश्चर्य मालूम होता है। एक ही रात में क़िला फ़तह।

शिवा०ः–महाराज, दुर्ग-विजय की शिक्षा हमने लड़कपन से पाई है। तथापि जिस प्रकार हमने अनायास हस्तगत करने का विचार किया था वह न हो सका।

जय०ः–क्यों ?

शिवा०ः–विचार यह था कि सब सोते मिलेंगे, परन्तु पहुँचने पर मालूम हुआ सब के सब जाग रहे हैं और लड़ाई के लिये तैयार हैं।

जय०:- यह जानकर कि रात को भी लड़ाई होती है, शत्रु लोग अब तैयार रहते हैं।

शिवा०:-ठीक है। परन्तु आज तक जितने दुर्ग विजय किये, किसी में भी ऐसी सजी सजाई सेना नहीं मिली।

जय०:-अनुभव लोगों को शिक्षा देता जाता है। परन्तु कुछ भी हो, तैयार रहें अथवा न रहें, शिवाजी का गतिरोध करना असाध्य है। शिवाजी की जय अनिवार्य है।

शिवा०:-आपकी कृपा से दुर्ग तो जीत लिया किन्तु कल रात की क्षति इस जीवन में पूर्ण नहीं हो सकती। अब हम उन दो तीन सौ सैनिकों को नहीं देख सकते जो कल की लड़ाई में वीरगति को प्राप्त हुए हैं। वैसे दृढ़प्रतिज्ञ और विश्वासी सैनिक अब हमको नहीं मिल सकते।

[रहमतखां सिपहसालार का आना। माथे पर तलवार का घाव है। पट्टी बँधी हुई है। शिवाजी का स्वयं उठकर रहमतखां के बंधन अपने हाथ से खोल देना]

शिवा०:-वीरवर! युद्ध के नियम के अनुसार आपके हाथ बांधे गये और रात भर आप बंदी भी रहे। मेरे इस अपराध को क्षमा करें। अब आप स्वाधीन हैं। जय पराजय तो भाग्य के अधीन है। परन्तु आप जैसे वीर के साथ लड़कर हम सम्मानित हुए।

रह०:-क्षत्रीराज! कल मैंने आपके ताकतेबाज़ू से

शिकस्त खाई थी, आज उससे कहीं ज्यादः आपके अख़लाक़ ने शिकस्त दी। जो हिन्दू मुसलमान का मालिक है, जो बादशाहों का बादशाह है, और जो ज़मीनो-आसमान का सुलतान है, उसी ने आपको सलतनत पर हुकूमत की अक़्ल दी है।

जय०:-पठान सेनापति! आपने भी अपने उच्च पद की मर्यादा को पूरी तरह निभाया है। दिल्लीश्वर आप जैसे सेनापति को पाकर प्रसन्न होंगे। क्या मैं इस संबंध में दिल्लीश्वर को लिख सकता हूं?

रह०:-महाराज! आपकी गुफ़्तगू से मुझे बड़ी इज्ज़त मिली। मगर बचपन से जिसका नमक खा रहा हूं उसे छोड़ नहीं सकता। जब तक हाथ में शमशीर पकड़ने की ताक़त है बीजापुर से नाता नहीं तोड़ सकता।

शिवा०:-यही होगा। आज की रात आप यहीं विश्राम करें। कल हमारी सेना आपको बीजापुर तक निरापद पहुँचा आवेगी।

रह०:-महाराज! आपने हमारे साथ सलूक किया है। हम भी आपके साथ बुराई नहीं कर सकते और न कोई बात पोशीदा ही रखना चाहते हैं। आप अपनी फ़ौज में खूब तलाश कीजिये, सभी आपके खैरख़्वाह नहीं हैं। कल लड़ाई के पहले खुफ़िया तौर पर मुझे आपके इरादे का पता चल गया था। यही सबब है कि तमाम रात हम मुसल्लह लड़ाई के लिये तुले बैठे रहे। ख़बररसाँ आपका एक सैनिक है। इससे ज्यादः हम और नहीं बता

सकते। सचाई और क़ौलो-करार को तोड़ नहीं सकते।

[रहमतखां का जाना। सब का आश्चर्य करना। शिवाजी का मुँह क्रोध से लाल हो जाना]

जय०:-[शिवाजी से] शान्त हो। [सैनिकगण से] इस दुर्ग की चढ़ाई की बात तुम्हें कब मालूम हुई?

एक सै०:-महाराज! एक पहर रात गये।

जय०:-इससे पहले कोई कुछ जानता था?

दूसरा सै०:-केवल इतना कि आज रात को किसी दुर्ग पर आक्रमण किया जायगा। परन्तु किस दुर्ग पर आक्रमण होगा, यह कोई नहीं जानता था।

जय०:-किस समय सेना दुर्ग के निकट पहुँच गई थी?

एक सै०:-कोई छै घड़ी रात गये।

जय०:-अच्छा एक घड़ी रात से छै घड़ी रात गये तक क्या तुम सब एकत्र थे? कोई अनुपस्थित तो नहीं था? यदि अनुपस्थित रहा हो तो बता दो। देखो, एक के कारण सभी न अपमानित हो। तुमने शिवाजी के अधीन कार्य किया है। राजा तुम्हारा विश्वास करता है। तुम भी ऐसा प्रभु कभी नहीं पाओगे। अपने को विश्वासयोग्य साबित कर दो। यदि कोई विद्रोही है तो उसे सामने लाओ। यदि वह कल की लड़ाई में मारा गया है तो उसका नाम बताओ। यों सन्देहवश क्यों कलुषित होते हो।

शिवा०:-[शान्तभाव से] महाराज! यदि आप उस कपटाचारी का पता लगा दें तो मैं आजन्म आपका ऋणी रहूंगा।

चन्द्र०:–महाराज ! कल जब एक पहर रात गये हम लोग युद्ध के लिये यात्रा कर रहे थे उस समय मेरा अधीनस्थ एक हवलदार खोजने पर भी नहीं मिला था। परन्तु दुर्ग के नीचे वह मिल गया था।

शिवा०:–[आश्चर्य और गम्भीर स्वर में] वह कौन है ? क्या अभी तक जीवित है ?

चन्द्र०:–हां, जीवित है, और उसका नाम रघुनाथ हवलदार है।

शिवा०:–[तमक कर] निन्दक ! कपटाचारी ! तेरी निन्दा रघुनाथ के यश को स्पर्श नहीं कर सकती। मैंने रघुनाथ की वीरता अपनी आँख से देखी है। मिथ्या निन्दक को दंड अवश्य भोगना पड़ेगा।

[शिवाजी का कटार निकालकर चन्द्रराव पर चलाना। रघुनाथ का बचाना]

रघु०:–महाराज ! चन्द्रराव के प्राण न लीजिये। वह झूठ नहीं कहते हैं। वास्तव में उस समय मैं अनुपस्थित था।

शिवा०:–[दोनों हाथ से सिर पकड़कर] अनुपस्थित था, क्या मैं स्वप्न देख रहा हूं ? रघुनाथ ! क्या यह कार्य तुम्हारा है ? क्या तुम प्राचीर लंघन के समय अद्भुत विक्रम दिखाकर अग्रसर नहीं हुए थे ? क्या तीन सौ सिपाहियों को लेकर तुमने अफ़ग़ानों को परास्त नहीं किया था ? क्या यह सब इसी लिये था कि शत्रुओं को भेद का संवाद दे चुके थे, अपने मालिक का सर्वनाश कर चुके थे ?

रघु०:–प्रभो ! मैं इस दोष का भागी नहीं। ऐसे निन्द्य कार्यों का अनुरागी नहीं।

शिवा०:–[गरजकर] फिर किस लिये मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर एक पहर रात तक अनुपस्थित था ?

[रघुनाथ का कुछ उत्तर न देना]

शिवा०:–कपटाचारी ! इसी लिये वीरत्व प्रकट किया था। परन्तु याद रख, छोटी घड़ी में शिवाजी को छलने का विचार किया था।

रघु०:–राजन् ! छल और कपट हमारे वंश की रीति नहीं। इसे चन्द्रराव भी जानते हैं।

शिवा०:–पापात्मा ! परित्राण की चेष्टा वृथा है। भूखे सिंह के ग्रास से बचकर भाग जाना सम्भव है परन्तु मेरे क्रोध से बचना असम्भव है।

रघु०:–मैं महाराज के निकट परित्राण की प्रार्थना नहीं करता, मनुष्य मात्र के निकट प्राण-भिक्षा नहीं मांगता। भगवन् ! तुम मेरे दोष की मार्जना करो।

शिवा०:–विद्रोही ! सावधान हो। तेरा रक्त पीने को यह बर्छी तैयार है।

रघु०:–[घुटनों के बल बैठ और गर्दन झुकाकर] विद्रोही नाम धारण करने की अपेक्षा प्राण देना स्वीकार है।

[शिवाजी का बर्छा उठाकर रघुनाथ पर चलाना। जयसिंह का हाथ पकड़ लेना]

शिवा०:–[क्रोध से] हाथ छोड़ दो। राजपूतों का कुछ भी नियम हो, उसके जानने की आवश्यकता नहीं। विद्रोही को प्राण-दंड देना ही महाराष्ट्रीय सनातन नियम है। शिवाजी उसी का पालन करेगा।

जय०:—[शान्त भाव से] क्षत्रियराज ! शान्त हो। आज आप जो कर रहे हैं कल उसके लिये पछताना पड़ेगा। यदि इसको आज प्राणदंड दोगे तो अवश्य जन्म भर पछताओगे। लड़ाई करते ही हमारे बाल पके हैं। हमारी बात मानो। यह योद्धा विद्रोही नहीं है और न यह समय इसकी जांच के लिये अनुकूल है। आपको अपना सुहृद् जान आपसे प्रार्थना करता हूं। योद्धा की प्राण-भिक्षा चाहता हूं।

शिवा०:—[शान्त भाव से] तात ! मेरी ढिठाई क्षमा कीजिये। आपकी बात की कभी अवहेलना नहीं की जा सकती। परन्तु शिवाजी द्वारा विद्रोही को क्षमा—इस बात पर किसको विश्वास होगा। हवलदार ! राजा जयसिंह ने तुम्हारी प्राण-रक्षा की है। इस लिये अपने प्राण लेकर यहां से चले जाओ। शिवाजी को फिर न मुँह दिखाओ।

[परदे का गिरना]

दूसरा दृश्य

चन्द्रराव का गृह

[चन्द्रराव का आना]

चन्द्र०:–[स्वय] रघुनाथ ! तुम हमारे परम शत्रु हो। एक दिन तुम्हारे पिता ने भरी सभा में मेरा अपमान किया था, आज उसी का यह बदला लिया गया है । इसके अतिरिक्त तुम अपनी कीर्ति हम से भी अधिक बढ़ाना चाहते थे, भला मुझसे यह कैसे देखा जा सकता था । उसी का यह फल तुम्हे मिला । याद रक्खो, अब कभी चन्द्रराव से बढ़कर चलने की चेष्टा न करना । चन्द्रराव किसी भी विजातीय का अपने से आगे बढ़ना नहीं देख सकता । चाहे वह शत्रु हो या मित्र, दोषी हो अथवा निर्दोषी, अपकारी हो या उपकारी, जो मेरे मार्ग में कांटा बनकर पड़ता है उसे मैं तिनके के समान ठुकरा कर फेंक देता हूं। रघुनाथ ! तुम अभी बालक हो, तुम्हारी शक्ति ही क्या है। बड़े २ पदाधिकारी भी मुझ से डरते हैं। आज मेरे ऋण का शोध हुआ।

[लक्ष्मीबाई का आना]

लक्ष्मी०:–स्वामी ! आप पर ऐसे किस ऋण का भार था जिसके कारण आप पर दुख का अधिकार था ?

चन्द्र०:–[गम्भीर स्वर में] सुनोगी ? वह था एक व्यक्ति से अपने अपमान का बदला लेना।

लक्ष्मी०:–[डरते हुए] अपने अपमान का बदला लेना......
किस से.........।

चन्द्र०:–रघुनाथ से।

लक्ष्मी०:–[कांपती हुई आवाज में] क्या, मेरे प्यारे भाई से?

चन्द्र०:–हां, हां तेरे भाई से।

लक्ष्मी०:–उसने आपका कौन सा अनिष्ट किया था?

चन्द्र०:–कौन सा अनिष्ट, क्या तुम्हे याद नहीं। तुम्हारे पिता से तीन बार वचन पाकर तुम्हे ब्याहने की इच्छा प्रकट की थी। उस पर उन्होंने भरी सभा में यह उत्तर देकर अपमानित किया था कि पहले लक्ष्मी के लिये स्थान और धन एकत्र कर लो फिर उसके साथ विवाह की कामना करना। दस्युओं की भांति जंगल और पहाड़ों में फिरनेवाला लक्ष्मी का पति कदापि नहीं हो सकता। इसी अपमान का बदला आज उसके पुत्र से लिया गया है।

लक्ष्मी०:–यदि मान भी लिया जाय कि यह अपराध ही है तो क्या पिता का बदला पुत्र से चुकाना राजपूतों का धर्म है। यह पुत्र का नहीं पिता का कर्म है।

चन्द्र०:–है क्यों नहीं। उसने थोड़े ही दिनों में मुझसे अधिक कीर्ति प्राप्त कर ली थी। कुछ ही काल में महाराज के मन में जगह कर ली थी।

लक्ष्मी०:–मनुष्य जितनी उत्तम रीति से अपने प्रभु का कार्य करता है वह उतने ही यश का भागी होता है। इसमें भी उसका कोई अपराध नहीं।

चन्द्र०:–[रुष्ट होकर] मुझे तुम्हारी सम्मति की कोई आवश्यकता नहीं। मेरी जो इच्छा होगी वही करूंगा। याद रक्खो, यदि फिर कभी रघुनाथ मुझ से बढ़कर चलने की चेष्टा करेगा तो अवश्य उसे अपने जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।

(गाना)

पद (आसावरी जोगिया)

कहो यह कौन देश की नीत ?
पितु को दाँव पुत्र सों लहिये तोरि प्रीति परतीत।
बुध औ वेद विरुद्ध बखानत नई उठावत भीत॥ कहो यह...
जो सुन पैहैं शिवा भूपमणि तव चोखी अनरीत।
दण्ड कठोर देंय हठि तुमको बिसर जाय सब गांत॥ कहो यह...
अधम बहेलिया बेधत पच्छिन बच्चन कादत जीत।
कृपा कोर करि तिनको पालत त्यागि धरम अपुनीत॥ कहो यह...
बीज बये यह वृक्ष बढ़ै जो फल फलिहैं अति तीत।
सगरो कुटुम्ब खात तिन रोइहै तब पछतैहौ मीत॥ कहो यह...

[जाना] [परदे का गिरना]

तीसरा दृश्य

वन

[लक्ष्मी और रघुनाथ का बातें करते हुए आना]

रघु०:-नहीं, बहन लक्ष्मी ! कभी नहीं । रघुनाथ विद्रोही कहलाकर जीवित रहना नहीं चाहता ।

लक्ष्मी०:-तो क्या भाई तुम अपनी बहन लक्ष्मी को सदा के लिये दुःखिनी बनाया चाहते हो ? पिता भी नहीं, माता भी नहीं, केवल एक तुम्ही हो। क्या अब लक्ष्मी के लिये तुम्हारे हृदय में तनिक भी ममता नहीं ?

रघु०:-नहीं बहन, ऐसा नहीं है। रघुनाथ उसी प्रकार तुम से प्रेम करता है । किन्तु यह कलंकित जीवन अब भार मालूम होता है । तुम्हे अभी वीरों के दुख का ज्ञान नहीं । जिस पुरुष में माता पिता का वीर रक्त है वह कलंक का टीका लगाकर जीवित रहना कदापि स्वीकार नहीं कर सकता ।

लक्ष्मी०:-फिर इस कलंक के मिटाने की चेष्टा क्यों नहीं करते ? अकालमृत्यु से तो यह सहस्रगुण उत्तम है।

रघु०:-परन्तु ऐसा उपाय कोई सूझ नहीं पड़ता ?

लक्ष्मी०:-सुना है, महाराज शिवाजीने महाराज जयसिंह को दिल्ली जाने का वचन दिया है । यदि वे दिल्ली गये तो सैकड़ों घटनायें होने की सम्भावना है।

फिर तुम्हे अपने को निर्दोषी सिद्ध करने के सैकड़ों अवसर मिल सकते हैं।

रघु०:-यदि ऐसा है तो मैं अवश्य दिल्ली जाऊंगा और अपना कलंक धोने का उद्योग करूंगा। अच्छा अब आज्ञा दो।

लक्ष्मी०:-भाई! कुछ पुरस्कार चाहती हूं। परन्तु कहते हुए संकोच और भय लगता है।

रघु०:-मैं तुम्हारा भाई हूं। भाई से संकोच कैसा। तुम्हारी जो इच्छा हो निःसंकोच प्रगट करो।

लक्ष्मी०:-तुम्हारे अपकारी का नाम क्या है, क्या तुम जानते हो?

रघु०:-हां जानता हूं—चन्द्रराव जुमलेदार।

लक्ष्मी०:-प्रतिज्ञा करो, उनका अनिष्ट कभी न करोगे। भाई के निकट इससे पहले मैंने कोई भिक्षा नहीं मांगी। यदि उचित समझना तो इसका निर्वाह करना।

रघु०:-बहन! तुम्हारे लिये कुछ अदेय नहीं। हम खड्ग की शपथ खाकर कहते हैं कि उनका कभी अपकार नहीं करेंगे।

(गाना)

ग़ज़ल

किया है पन बड़ा भीषण,
हरी निरबाह करवैया।
प्रभो है हाथ में तेरे,
हमारी लाज की नैया॥

डुबा दे या उतारे अब,
तुझे अधिकार पूरा है।
नदी उमगी तरी टूटी,
तिहारी आस रघुरैया ॥
बदी कर्ता वह पग पग पर,
बड़ा है नीच बहनोई।
न कैसे रोष भड़केगा,
लगी है हाथ असि भैया ॥
समझता था मुसीबत को,
न तौ भी टाल सकता था।
बहन की पहली भिक्षा थी,
पसारे हाथ मुख भैया ॥
उसी कुल में हुआ पैदा,
बढ़ाई बेल हरिचंद ने।
जगत जाने व्यथा दशरथ,
दिये दो दान केकैया ॥
दिलाता याद उस दिन की,
रचा जब भीष्म ने था रन।
सहज छोड़ी शपथ अपनी,
भगत की बात रखवैया ॥

[दोनों का जाना]

[परदे का उठना]

चौथा दृश्य

[शिवाजी का अपने सुयोग्य कर्मचारियों सहित आना]

शिवा०:-पेशवाजी ! पहले आप कहा करते थे कि सम्राट की अधीनता स्वीकार करने से एक जागीरदार की भाँति रहना पड़ेगा । परन्तु अब उसके विपरीत क्यों परामर्श दे रहे हैं ?

पेश०:-मनुष्य जो कुछ कर सकता है, आपने वही किया। किन्तु "विधि का लिखा को मेटनहारा" ।

सुवर्णदेवः-क्षत्रियराज ! भवानी के ही आदेश के अनुसार आज तक स्वाधीनता की रक्षा करते रहे और अब भी उसी की इच्छा से निरस्त्र हो रहे हैं । ईशानी ने स्वयं हिन्दू सेनापति के साथ युद्ध करने का निषेध किया है ।

अन्नजीदत्तः-यह अनिवार्य है । आप अब दिल्ली जाने के कर्त्तव्याकर्त्तव्य की विवेचना कीजिये ।

शिवा०:-अन्नजी ! आपका कथन सत्य है । परन्तु जिस आशा और चेष्टा ने बहुत दिन से हृदय में स्थान पाया था, क्या वह सहज ही में विस्मृत हो जायगी? क्या महाराष्ट्र देश फिर स्वाधीन न हो सकेगा ? क्या फिर कभी भारतवर्ष पर हिन्दू-गौरव-सूर्य उदय होकर अपनी तेजोमयी किरणें नहीं फैलावेगा ? ईशानी ! यदि यह आशा झूठी और स्वप्न मात्र है तो फिर इन झूठे स्वप्नों से हृदय क्यों चंचल कर रही हो ।

[परदे के भीतर से शब्द सुनाई देना]